''ब्रम्हचर्य''

लेखक - श्री भंवरसिंह पंवार

ब्रह्मचर्य शब्द की व्याख्या विस्तृत है व विषय वस्तु, कार्य क्षैत्र भी अपरिमित है। ब्रह्म अर्थात शरीर का स्वामी (राजा) द्वारा (ब्रह्म) चरित्र का पालन करना ही ''ब्रह्मचर्य'' है। बाहरी रुप में, बोल चाल में ''ब्रह्मचर्य'' का सीधा अर्थ संयम, नियम का पालन करने से व विषय वासना से परे रहने से है। किन्तु इतने व्यापक शब्द को संकीर्ण बनाना या थोड़े से शब्दों में बान्धकर परि भाषित करना अन्याय ही होगा। प्राचीन काल में साधु, सन्त, ऋषिमुनि एकाग्रचित होकर, दोनो भौंहो के मध्य दृष्टि स्थिर कर ईश्वर आराधना में, तपस्या में तन्मय हो जाते थे और इस प्रकार आत्मा में परमात्मा का प्रतिबिम्ब देखते हुए अन्त में ब्रह्मलीन हो जाते थे। यह सब ''ब्रह्मचर्य'' का ही प्रभाव था। ब्रह्मचर्य के प्रभाव से मन की स्थिरता हमें ईश्वर के, सत्य के व ज्ञान के निकट ले जाती है।

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मै हम ब्रह्मचर्य का पालन कर सकते है, अपने आचार, विचार, व्यवहार व क्रीया कलाप में, अपने व्यवसाय के प्रति ईमानदार होकर, अध्ययन में, सेवा (नोकरी) में, प्रार्थना मै, सुक्ष्म व स्थूल रूपों कें निर्वाह में 'ब्रह्मचर्य' व्रत कसोटी पर कस कर खरा साबित करता है। इस व्रत के व्रति को त्याग, वैराग्य, दृढ संकल्प तथा साहसी होना पडेगा, साथ ही सहनशील, परोपकारी व दीन बन्धु भी होना होगा, तब जाकर ''भीष्म प्रतिज्ञा'' के मूल मंत्र को जीवन में उतारने में सफलता प्राप्त करने का साहस सम्भव होगा।

ब्रह्मचर्य व्रत का पालन अपने आचरण से, संकल्प से व निष्ठा से व्यक्ति कर सकता है किन्तु हमारा झुकाव, हमारी गति निर्माण की ओर हो न कि अस्थिरता या विध्वंस की ओर। भीष्म पितामह की प्रतिज्ञा ने, भीष्म के वचन से बन्धे होने की मजबूरी ने उन्हीं की आँखो के समक्ष अन्याय, अधर्म और उच्चाकांक्षा तथा पुत्र मोह के दावानल में न मात्र हस्तीनापुर अपितु एक 'युग' को मानवता को, झोंक दिया और परिणाम हुआ ''महाभारत'' माँ वसुन्धरा के धुरन्धर वीर, योद्धा, धनुर्धारी, महारथी भाई-भाई आपस में टकरा-टकरा कर चूर-चूर हो गये समाप्त हो गये। यदि महाभारत न होता तो कर्ण, अर्जुन, दुर्योधन व अभिमन्यु का शौर्य व पुरुषार्थ क्या-क्या रंग लाता। ये - योध्दा समस्त भू मण्डल पर ही नहीं पाताल व स्वर्ग लोक में भी अपनी वीरता का डंका बजा देते।

यम् ब्रह्म इव आचरति,
तम् ब्रह्मचर्य उच्चयते।

ब्रह्म का आचरण, ब्रह्म का आदेश व अन्त: करण की आज्ञा को जीवन में उतारते ''ब्रह्मचर्यव्रत'' के महत्व को समझते तो भारत का भविष्य कुछ और ही होता, जगतगुरु कहलाने वाला भारत जगत वन्दनीय भारत का कहलाता और भारतमाता को अपने ही बेटो के रक्त से रंजित न होना पड़ता। छोटे-बडे, अपने-पराये, उँच-नीच की भावना साम्प्रदायिकता का दैत्य अपनी भुजाएँ न फैला पाता और वर्तमान में जो कुछ हो रहा है न होता क्यों कि भूतकाल ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्तमान को धरोहर के रुप में कुछ न कुछ दे जाता है और दुर्भाग्य हमारे वर्तमान के कि हमें अतित से नफरत, छलावा, साम्प्रदायिक भेदभाव की कटुता व उच्चाकांक्षा जो स्वार्थ से लिप्त है, प्राप्त हुई।

यह विडम्बना है अथवा भाग्य की कमजोरी कि हमने अर्थ को अनर्थ के रुप में समझा व स्वीकारा "ब्रह्मचर्य" शब्द का अर्थ हम मात्र चरित्र पालन व संयम से ही जोड़ बैठे है, जबकि मन, वचन, कर्म, व्यवहार, वाणी, आचरण सभी में हम ब्रह्मत्व के दर्शन करें। समस्त जीव, चराचर में "ब्रह्म" का अनुभव करें, दर्शन करे और यह माने कि "सिया राम मय सब जग जानी"।

सब में ब्रह्म व ब्रह्म में सब विद्यमान है, जब हमारी मानसिकता, वैचारिकता, ज्ञान इस निशकर्ष तक पहुँचेगा तब हम अपने आप को, जगत को और जगदीश को पहचानेगे। जैन धर्म में "ब्रह्मचर्य" शब्द को व्यापक व विस्तृत रुप में स्वीकार है, सत् आचरण, नियम पालन, संयम, सत्भाषी एवं ब्रह्म के अनुरुप आचरण करना 'ब्रह्मचर्य' है। वैसे देश काल व समय के अनुसार शब्द का अर्थ व्यापक व विस्तृत होता रहा है और "ब्रह्मचर्य" शब्द भी इसी चक्र से प्रभावित हुआ है।

एक सच्चा "ब्रह्मचारी" ब्रह्म के मर्म को समझते हुए आचार-विचार का पालन करते हुए समाज, धर्म, राष्ट्र एवं मानवता की सेवा में संलग्न रहकर "विश्व कुटुम्ब" की "राम राज्य" की कल्पना करता है।

● संसार में रोग कभी नष्ट नहीं हुए कारण मनुष्य शरीर स्वत: रोगाय तन सम है। जो व्यक्ति पथ्या-पथ्या पालते नहीं है, रसेन्द्रत (जिहां) पर संयम नहीं रखते, सदाचारमय जीवन नहीं जीते, नियम-संयम बद्ध जीवन नहीं है, जिनका उन लोगों के पीछे रोग रुपी दानव (राक्षस) हमेशा लगा रहता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org